13

भाषा, स्वचेतना, तर्क और इन्सान

यह लेख दो हिस्सों में है। पहला हिस्सा स्वचेतना, तर्क और भाषा के सम्बन्ध को टटोलता है और इनके सम्बन्ध को समझने व शिक्षण के लिए इसके निहितार्थ पर प्रकाश डालता है। लेखक का मानना है कि इनकी व्याख्या बिना एक-दूसरे के होनी मुश्किल है। हालाँकि लेखक मानते हैं कि इन्सानों में स्वचेतना होने का कारण भाषा को माना जा सकता है क्योंकि भाषा इन्सानों को 'यहाँ और अब' (here and now) व 'कार्य-कारण' के बन्धन से मुक्त करती है; फिर भी स्वचेतना, भाषा और तर्क के बीच सम्बन्ध की प्रकृति क्या है, इसका क्या स्वरूप है, यह कहना मुश्किल है। वे बताते हैं कि भाषा ही प्रतीकों की ऐसी व्यवस्था देती है कि जो इन्सानों को अनुभवों व विचारों की अभिव्यक्ति, संरक्षण, उन्हें स्मृति में रखना, इच्छा, आवश्यकता व ज़रूरत के हिसाब से उनमें तब्दीलियाँ करने के साथ-साथ विचार श्रृंखला को आगे बढ़ाने की ताकत देती है। आगे लेखक भाषा, तर्क और गणित के रिश्ते के बारे में चर्चा करते हैं। वे यह भी कहते हैं कि तर्क, भाषा व गणित का सम्बन्ध और भाषा की स्वचेतना में भी भूमिका है। स्वचेतना हमें इस बात के लिए तैयार करती है कि हम सचेत होते हैं और अपनी सचेतता के बारे में भी सचेत होते हैं - यही स्वत्व व व्यक्ति होने का भी आधार है क्योंकि यह मुझे अपने कार्य को समझने व चुनने की कड़ी को आधार देता है। हालाँकि वे कहते हैं कि इसकी कड़ी के बारे में वे पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हुए हैं। उनका यह स्पष्ट मत है कि भाषा के आने से ही तर्क का उद्‌भव हुआ होगा क्योंकि भाषा की अनुपस्थिति में विचार श्रृंखला को आगे बढ़ाना मुश्किल है। इसी तरह यदि गणित और भाषा के रिश्ते के बारे में बात करें तो गणित की जो विशुद्ध श्रेणियाँ हम बना पाते हैं, वे हम इसलिए बना पाते हैं क्योंकि भाषा हमें हमारे मूर्त अनुभवों को, इन्द्रिय अनुभवों को एक विचार श्रृंखला में पिरोने में मदद करती है और धीरे-धीरे ये विचार इतने अमूर्त और व्यापक हो जाते हैं कि हम उनकी विशुद्ध श्रेणियाँ बना सकते हैं।

भाषा के बारे में जो बात मुझे मुग्ध करती है वह है इन्सान की चेतना और तर्कशक्ति से इसका सम्बन्ध। मुझे ऐसा लगता है कि ये तीनों चीज़ें - इन्सानी चेतना, तर्कशक्ति और भाषा अन्तरंग रूप से एक-दूसरे से जुड़े हैं। यह जुड़ाव शायद सिर्फ सम्बन्ध से कुछ ज़्यादा है, यह एक-दूसरे पर बहुत निर्भर है। हो सकता है इन तीनों में एक ही तरह के तत्वों की अभिव्यक्ति होती हो। इसलिए मैं भाषा के अन्दर झाँकने की बजाय इस जुड़ाव के नज़रिए से बात करूँगा। पहले मैं चेतना और तर्कशक्ति के बारे में कुछ आरम्भिक बातें कहूँगा और फिर मैं भाषा और गणित के बारे में बात करूँगा। मुझे लगता है कि भाषा इन्सानों में स्वचेतना उत्पन्न करने में एक बहुत ही अहम और महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। एक शिक्षक होने के नाते इन्सानों में स्वचेतना की बात ने मुझे हमेशा आकर्षित किया है क्योंकि यही वह बात है जो हमें तात्कालिक कार्य-कारण श्रृंखला को उस हद तक तोड़ने देती है, जब हम इसके कारण स्वयं के बारे में सचेत होने के साथ-साथ अपने परिवेश के बारे में भी और यहाँ तक कि अपनी सचेतता के बारे में भी सचेत हो जाते हैं।

यहाँ दो बातें हैं; पहली, मैं एक पेड़ के बारे में सचेत हो सकता हूँ और मैं कुछ चीज़ें कर भी सकता हूँ और उनके करने के बारे में सोच भी सकता हूँ, जैसे इस पर चढ़ना और इसकी छाया में बैठना। लेकिन तब फिर जैसे मैं वास्तविकता में वापस लौटता हूँ और मुझे ध्यान आता है कि 'ओह, मैं पेड़ के बारे में सचेत हूँ' या 'मैं पेड़ के बारे में यह सोच रहा हूँ' या 'पेड़ के बारे में जो मैं सोच रहा हूँ वह गलत भी हो सकता है और उसमें कुछ अन्य सम्भावनाएँ भी हो सकती हैं'। (वह यथार्थ हो सकता है अथवा यथार्थ से परे सिर्फ यह भी कि मैं जो जानता और सोचता हूँ उसके अलावा और भी कुछ हो सकता है।)

अब यहाँ कुछ हो रहा है, ऐसा हो सकता है कि पहले मैं स्वाभाविक कार्य-कारण सम्बन्ध के अन्तर्गत आने वाली सहजवृत्ति के अनुसार ही पूर्णतः व्यवहार कर रहा होऊँगा। जैसे ही मैं स्वयं के बारे में सचेत होता हूँ, और जो मैं सोच रहा हूँ उस बारे में सचेत होता हूँ, अचानक ही यहाँ और अब (here and now) की बाध्यता दूर हो जाती है, बिलकुल ही खत्म हो जाती है। और सहसा मैं कार्य-कारण बन्धन से मुक्त हो जाता हूँ और यह कल्पना कर पाता हूँ कि वहाँ क्या-क्या नहीं है और मैं चाहता हूँ कि क्या-क्या हो। मैं उन परिस्थितियों के बारे में सोच पाता हूँ जो नहीं हैं और वह सब वहाँ लाना चाहता हूँ, जो मैं चाहता हूँ कि वहाँ हों। मेरे ख्याल से यह एक क्रान्तिकारी बदलाव है। इस अर्थ में क्रान्तिकारी कि पहले, मैं एक रचना था, प्रकृति की रचना था और यह सम्भावना मेरे लिए एक रचनाकार होने की सम्भावनाओं को खोलता है। पहले मैं एक लगातार चल रही 'कारण और प्रभाव श्रृंखला' का एक प्रभाव था (उसका एक पुर्ज़ा था)। वह ऐसी गतिशील श्रृंखला है, जिसका उद्‌गम मैं नहीं जानता कि कहाँ है। यह मेरे लिए नई श्रृंखलाओं का प्रथम कारण होने की सम्भावना खोलता है। पहले से जो भी चल रहा था मैं उसमें कुछ नई शुरुआत कर सकता हूँ। और इसी लिए मुझे लगता है कि यह वह पहला क्षण है जहाँ मैं चयन कर सकता हूँ। और इसी वजह से यह 'इन्सानी एजेंसी' अथवा व्यक्ति होने की शुरुआत भी है, जिसके बारे में इन दिनों बहुत बात हो रही है। इसी वजह से इन्सान वास्तव में अपने आप में आ पाते हैं और

यह निस्सन्देह ही स्वचेतना के साथ-साथ चलता है। यह कैसे होता है और भाषा का इसके साथ किस तरह का रिश्ता है मैं इस बारे में स्पष्ट नहीं हूँ। इसमें कुछ मेरी कल्पना है, कुछ हिस्सा भाषा के बारे में सिद्धान्तों से है।

एक व्याख्या यह हो सकती है कि यह खास चीज़ (यानी स्वचेतना) इसलिए होती है क्योंकि भाषा हमें यह क्षमता प्रदान करती है – हम दो प्रतीकों को जोड़कर कुछ नया बना सकते हैं। भाषा और संज्ञानात्मक योग्यता साफ तौर पर हमारे अनुभवों का संकेत है। अनुभव के संकेतों से मेरा तात्पर्य है यदि मैं कुछ अनुभव करता हूँ, यदि मुझे कुछ इन्द्रिय बोध होते हैं तो मैं उन्हें याद रखता हूँ और किसी विशेष इन्द्रिय बोध को याद भी कर सकता हूँ। उस अनुभव की स्मृति को फिर से स्मरण कर सकता हूँ या उस इन्द्रिय बोध की अनुपस्थिति के बारे में स्मरण कर सकता हूँ। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि मुझे एक काँटा चुभता है और मुझे एक खास तरह का इन्द्रिय बोध होता है और अगले दिन जब काँटा वहाँ नहीं है तब भी मैं उसे महसूस कर सकता हूँ, उसे स्मरण कर सकता हूँ। इस प्रकार इसे विचार का जन्म होना कहा जा सकता है। लेकिन यह स्वयंमेव ही मुझे स्वचेतना की शक्ति नहीं देता। जब मेरी स्मृति में काँटे का एक संकेत बन जाता है और तब मेरे पास एक और संकेत होता है और जब मैं इन दोनों को जोड़ता हूँ और ऐसा कुछ बनाता हूँ जो मैंने भी आज तक नहीं देखा, कभी अनुभव नहीं किया और ऐसा भी जो शायद सम्भव ही नहीं है। इसलिए यह सम्भावना जिसे पारम्परिक (Classical) भारतीय विचारधारा में कभी-कभी 'शाशाह रिंग' यानी खरगोश के सींग कहा जाता है। सींग का मुझे अनुभव है और यह मेरी स्मृति में भी है, खरगोश का भी मुझे अनुभव है और यह भी मेरी स्मृति में है और अब मैं खरगोश और सींग के अनुभव को जोड़ सकता हूँ और सींग वाला एक खरगोश बना सकता हूँ। मेरे विचार से सींग वाले खरगोश को बना पाना रचना कर पाने की ताकत है। और यह क्षमता जो वहाँ नहीं है उस बारे में कल्पना कर पाने और मैं क्या हूँ इसे स्वयं देख पाने से अहम रूप से जुड़ी है। इसलिए चिन्तन, कल्पनाशक्ति और रचना करने व प्रतीकों को जोड़ पाने की योग्यता सब साथ-साथ चलते हैं। इस तरह की रचनाएँ कर पाने और प्रतीकों को जोड़ने की योग्यता का भाषा के बिना इतने परिष्कृत स्तर पर होना सम्भव नहीं है। यद्यपि इसकी वैकल्पिक परिकल्पनाएँ (Counter thesis) भी हो सकती हैं लेकिन मुझे लगता है भाषा की अनुपस्थिति में यह योग्यता होना सम्भव नहीं है। इसलिए मैं यह कहने की कोशिश कर रहा हूँ कि एक तरह से 'यहाँ और अब' से स्वतंत्रता और कुछ रच पाने की योग्यता मानवता को भाषा द्वारा प्रदत्त है। अब इसमें तर्क कहाँ से आ जाता है? निश्चित रूप से यह भी एक बड़ी ताकत है और अब आप स्वयं का अपना, नया व कल्पित ब्रह्माण्ड गढ़ सकते हैं और यह सुन्दर बात है। लेकिन उस मानव संज्ञान और उस भाषा से, जो उसी समय संज्ञान के साथ-साथ निर्मित हो रही है, यह ब्रह्माण्ड असंगत हो सकता है। मानव संज्ञान का कुछ भाग भाषा से स्वतंत्र हो सकता है या अगर उसे भाषा से स्वतंत्र न भी कहें तो भी निश्चित रूप से वह उस भाषा के तहत नहीं होता जो इन्द्रियों, स्मृति आदि से आती है। मानव संज्ञान का कुछ हिस्सा भाषा द्वारा संरक्षित और रचित किया जाता है। तो ये दो चीज़ें साथ-साथ हैं - एक तो भाषा एक नई सृष्टि की

रचना कर सकती है, ऐसी सृष्टि जो संज्ञान की दृष्टि से असंगत हो और इन्द्रिय अनुभवों के प्रतिकूल हो। (और दूसरा वह हमारे संज्ञान व इन्द्रिय अनुभवों के कुछ पहलुओं को संरक्षित करती है व उनसे अन्तःक्रिया कर उन्हें विकसित भी करती है - सम्पादक)

भाषा हमें परिकल्पना रचने का सामर्थ्य देती है। यह परिकल्पनाएँ न सिर्फ शुद्ध तर्क (Reason) की दृष्टि से विरोधाभासी हो सकती हैं वरन् दुनिया के हमारे अनुभव या अनुभवों के भी विपरीत हो सकते हैं। लेकिन भाषा मानवों में विचार का संचालन भी करती है और इसीलिए व्याकरण के अन्तर्गत मानवीय सोच के कुछ नियम भी हैं। मानवीय सोच के लिए नियमों का जो दूसरा हिस्सा है वो हमें इन्द्रिय अनुभवों में तलाशना चाहिए क्योंकि अन्ततः हम सांसारिक जीव हैं। इन दोनों को मिलाने पर हमें इस बात का सत्व (Core) मिलता है कि मानव विचार कैसे आगे बढ़ते हैं और किस तरह के निष्कर्ष देना वैध है और कैसे निष्कर्ष निकालना वैध नहीं है। दूसरे शब्दों में, क्या कल्पना करना वैध है, जायज़ है और क्या कल्पना करना जायज़ नहीं है। टीपी वालड्रन का सोचना है कि 'तर्क' की बात तब आई जब मानवजाति के पास भाषा आई और उन्होंने परिकल्पना गढ़ना शुरू किया और जब ये परिकल्पना इस कदर बढ़ने लगी कि उनका कोई सिर पैर नहीं रहा और जब इन परिकल्पनाओं ने स्वयं को ही नकारना शुरू कर दिया।

इस विरोधाभास को सीमित करने के लिए तथा सुसंगतता वापस लाने के लिए, भाषा में अन्तर्निहित तर्कों को अमूर्त स्वरूप में सामने लाकर प्रकट किया जाता है और भाषा में अन्तर्निहित विचार के नियमों को भी बाहर लाकर स्पष्ट व्यक्त किया जाता है (या प्रस्तुत किया जाता है)। इन्हें शुरू में गैर-अमूर्त विचार पैटर्न के रूप में विषयवस्तु के साथ रचा जाता है और बहुत बाद में, बेशक धीरे-धीरे, वे अमूर्त बन जाते हैं।

इस दृष्टि से तर्क को देखने पर लगता है कि एक तरह से तर्क भाषा के बारे में सचेत होता है। (वह मानता है) कि हाँ तुम्हारे (भाषा के) पास ताकत है लेकिन तुम (भाषा) जो भी कर रहे हो उसमें कुछ मानदण्डों (Norms) को ध्यान में रखो। यह तर्क का एक तरह का विवेचन (Interpretation) है।

यदि आप इस रिश्ते के बारे में आगे कुछ और अन्वेषण करना चाहें तो यह प्रश्न पूछ सकते हैं कि इसमें गणित कहाँ से आता है? हम बहुत-सी चीज़ों के बारे में सोचते हैं और उनमें शायद, मूलरूप से गणित में शुरू में परिमाण और स्थान (Space) के विचार केन्द्रीय थे। परिमाण और स्थान में अन्तर्निहित तार्किक सम्बन्धों को खोजना गणित की चिन्ता रही है। बाद में गणितज्ञों ने समुच्च्य और उपसमुच्च्य के विचारों के बारे में खोजा, और यह भी कि इनसे हम क्या निहितार्थ निकाल सकते हैं - इन्हें हम किस प्रकार अन्य पहलुओं को समझने में अन्य विचारों को गढ़ने में इस्तेमाल कर सकते हैं। स्थान और परिमाण के साथ ही साथ अन्य मानवीय विचारों को भी हम दरअसल समुच्चय और उपसमुच्चय के रूप में परिवर्तित कर सकते हैं और सम्बद्धता (Belongingness) व एक-दूसरे में समाविष्ट होने के विचार के परिप्रेक्ष्य में इन्हें निष्पादित कर सकते हैं।

इसलिए लगता है कि गणित के विचार व तल्लीनता, श्रेणियों और उनके सम्बन्धों को एक अमूर्त रूप में समझने की भी रही है। इसमें परिमाण व स्थान को समझने की कोशिश भी सम्मिलित है। लेकिन जैसा कि हम सभी जानते हैं कि गणित उसी तरह के सम्बन्धों को समझाता है जो किसी भी ऐसी खास विषय वस्तु से विलग हैं जिसका दुनिया से कुछ लेना-देना है। दूसरे शब्दों में गणित और गणितीय सम्बन्ध अमूर्त हैं, दुनिया को समझने में इन्हें काम में लिया जाता है लेकिन यह दुनिया में मौजूद सामग्री से अलग हैं। इनका एक स्वतंत्र वैचारिक अस्तित्व है, जो ठोस रूप में परीणित नहीं है।

अपने इन्द्रिय अनुभवों में से विषयवस्तु को निकाल देने के बाद विशुद्ध श्रेणियों को लेकर काम करना और उनके बीच के सम्बन्धों को समझना, आपको एक खास तरह की सुलभता व स्वतंत्रता देता है। मैं यह भी सोचता हूँ कि इससे आप अपनी आत्मा में भी एक तरह की सुन्दरता व गूँज महसूस कर सकते हैं। लेकिन यह एक अलग मुद्दा है और हम इस पर बात नहीं कर रहे। विशुद्ध श्रेणियों के साथ काम होने के कारण आप कोई भी निष्कर्ष निकालने के लिए स्वतंत्र हैं और आप ज्ञान के लिए जितनी कठोर शर्तें बनाकर उस पर लगाना चाहें वह लगाने के लिए भी आप स्वतंत्र हैं। यह समझा जाता है कि आप उन निष्कर्षों को, उस समझ को मानवता पर थोपने का प्रयास करते हैं, तब शायद इसमें कुछ गलत होता है। मैं इसे ऐसे नहीं समझता हूँ। मुझे लगता है कि इसके विपरीत की परिस्थिति ही सही है। किसी भी विशिष्ट विषय-वस्तु का पूरी तरह से विकास इसको तमाम इन्सानी अनुभवों पर लागू करना सम्भव बनाता है और वह इसे 'यहाँ और अब' के सन्दर्भ से भी पुनः मुक्त करके एक बहुत व्यापक क्षेत्र (Range) के लिए वैध बनाता है। मुझे लगता है यही गणित है, यदि आप भाषा, गणित व तर्क के क्रम में देखें तो।

मैं भाषा के बारे में नहीं जानता यह भाषाविद् ही बता सकते हैं, पर एक खास चीज़ जो गणित में दिखाई देती है, वह है गणित की अपनी सृष्टि और इस सृष्टि के निवासियों की रचना कर सकने की आज़ादी। आप गणित में विचार व अवधारणाएँ गढ़ने के लिए स्वतंत्र हैं। आप एक रेखा की कल्पना कर सकते हैं, एक त्रिभुज की कल्पना कर सकते हैं, आप सैकड़ों आकृतियों की कल्पना कर सकते हैं, उनको परिभाषित कर सकते हैं और उनके साथ कार्य शुरू कर सकते हैं, उनके साथ एक अमूर्त सम्बन्ध देखने की शुरुआत कर सकते हैं और यह बिलकुल बढ़िया गणित होगी। गणितज्ञों को इस गणित पर कोई एतराज़ नहीं होगा। हो सकता है, संख्याएँ हमारे दिमाग में किसी व्यावहारिक ज़रूरत की वजह से उपजी हों। लेकिन एक बार आने के बाद वे इन्सानी दिमाग को उपलब्ध हो गईं - मनन के लिए व उन संख्याओं के बारे में सोचने के लिए। तब वे इन संख्याओं में पैटर्न बताना भी शुरू कर सकते हैं, सम और विषम देख सकते हैं, अभाज्य संख्याओं को देख सकते हैं, अभाज्य संख्याओं के प्रमेयों को सिद्ध करना शुरू कर सकते हैं और यह प्रश्न भी पूछ सकते हैं कि क्या कोई सबसे बड़ी अभाज्य संख्या है भी या नहीं। अपने आपको बहुत मुश्किल सवालों में डुबो सकते हैं जिनका जवाब भी सम्भव नहीं हो और इसी के अन्दर और भी अधिक श्रेणियाँ बना सकते हैं। आप इन श्रेणियों के बीच सम्बन्ध भी पता कर सकते हैं। आपके पास अपनी कल्पना से चीज़ों को निर्मित करने की पूर्ण स्वतंत्रता है और उनमें क्या सम्बन्ध है यह पता करने की भी।

इन गणितीय अवधारणाओं का एक और अजीब गुण यह है कि आप इनके तभी तक मालिक हैं जब तक आप इनको निर्मित और परिभाषित करते हैं। एक बार आपने उनको निर्मित और परिभाषित कर लिया, उसके बाद वे सभी स्वायत्त हो जाती हैं व आपकी आज्ञा का पालन नहीं करतीं। आप एक रेखा की कल्पना कर सकते हैं, एक बिन्दु की कल्पना कर सकते हैं, एक त्रिभुज की कल्पना कर सकते हैं, लेकिन बाद में ये रेखा और त्रिभुज किस तरह का व्यवहार करेंगे यह आप तय नहीं कर सकते। वे आपके आदेशों का पालन नहीं करेंगे। वे अपने आचरण में स्वायत्त होंगे और तब आपको पता करना पड़ेगा कि वे कैसा आचरण करते हैं। अत: यह वह खेल है जो गणितज्ञ खेलते रहते हैं।

यह एक अलग प्रश्न है कि क्या यह खेल मानवीय स्थितियों और मानवीय अनुभवों आदि हेतु प्रासंगिक है या नहीं, उनसे सम्बद्ध है या नहीं। लेकिन कई परिस्थितियों में यह अचानक सामने आ जाता है व प्रासंगिक लगता है। कुछ हिस्सा उपयोगी प्रतीत होता है और कुछ उपयोगी प्रतीत नहीं होता। पर यह हो सकता है कि कोई चीज़ जो आज उपयोगी नहीं लगे, 100 वर्षों बाद कोई यह खोज कर सकता है जिससे यह पता चले कि यह बहुत उपयोगी है। इसलिए यह एक जटिल मुद्दा है।

अत: मुझे लगता है कि मानव दिमाग की विषय-वस्तु को आकार देने के लिए भाषा, गणित और तर्क तीनों साथ मिलकर एक *टूल किट* यानी उपकरणों का एक बक्सा बनाते हैं। इससे मेरा तात्पर्य उन सारे अनुभवों को साथ रखने से है जो हमें अपनी इन्द्रियों के माध्यम से होते हैं। हम इस टूल किट का उपयोग करते हैं। इनसे हम इन अनुभवों को व्यवस्थित करने, वर्गीकृत करने, किसी खास क्रम में रखने इत्यादि कार्यों में उपयोग करते हैं। इन सब से हम अर्थ की जानकारी पा सकते हैं और इनकी मदद से ही हम इस दुनिया को समझते हैं। यह अर्थ हमें व्यवहार करने हेतु व इस दुनिया का हिस्सा बनने हेतु सुविधाएँ देता है और इस दुनिया को नियंत्रित करने हेतु कुछ सामर्थ्य देता है। इसका इन्सानी दिमाग से ऐसा ही रिश्ता है। मुझे यही प्रतीत होता है कि यह सब फिर यह एक भ्रम देता है कि हम दुनिया के कुछ हिस्सों को नियंत्रित कर सकते हैं।

अब मैंने अभी तक जो कहा उसके शिक्षाशास्त्रीय निहितार्थों के बारे में बात करूँगा। मुझे कहा गया था कि मैं अमूर्त चीज़ों के बारे में ही चर्चा नहीं करता रहूँ बल्कि इसे अपनी सिखाने व सीखने की कला से भी जोड़ूँ। एक बहुत स्पष्ट बिन्दु यह है कि तर्क और भाषा, खास तौर पर, जब हम भाषा पढ़ाते हैं (प्राय: हम भूल भी जाते हैं, हालाँकि इस बारे में निस्सन्देह इन दिनों हम ज़्यादा जागरूक होते जा रहे हैं) तब हम भाषाई पैटर्नों, या शब्द या व्याकरण में निपुणता पर ही ज़्यादा फोकस करते हैं। इन्सानी दिमाग, तर्क और भाषा का रिश्ता इस बात का संकेत देता है कि भाषा सिखाने या भाषा विकास का शायद सबसे बेहतर तरीका, जो भाषा हमारे पास है इसका उपयोग करते हुए अपने स्वयं के अनुभवों पर मनन करना, उनका सुन्दर ढंग से वर्णन करना, जितना सम्भव हो पाए उतना विस्तार से वर्णन करना, उनकी आलोचना करना, तुलना करना, उनमें संगतता है या नहीं यह देखना, तार्किकता, गैर-तार्किकता देखना, अलग-अलग सृष्टियों की कल्पना करना या अलग-अलग

परिस्थितियों की कल्पना करना और उन काल्पनिक चीज़ों में भी तर्क खोजना ही है। इसकी ज़्यादा व्याख्या करने की बजाय यदि मैं साहित्य की, खास तौर पर सलमान रश्दी की बात करूँ तो आसान होगा। यदि आप रश्दी का साहित्य देखेंगे तो पाएँगे कि वे भाषा की मदद से एक विशुद्ध काल्पनिक सृष्टि की रचना करते हैं, पर इसके बावजूद यह सृष्टि तार्किक है। काल्पनिक होने के बावजूद जिससे इसमें बहुत-सी चीज़ें होना सम्भव है, इसमें कठोर तर्क होते हैं जो यह निर्धारित करते हैं कि उस सृष्टि में कुछ चीज़ें हो सकती हैं व कुछ अन्य चीज़ें नहीं ही हो सकतीं। इसलिए कल्पना करना और इस कल्पना के अन्तर्गत तर्क की लड़ियों को देखना भाषा अर्जित करने और इनके माध्यम से भाषा सीखने का रास्ता है और यही शायद इसका एक शिक्षाशास्त्रीय निहितार्थ है।

दूसरा बिन्दु (वैसे इसमें बहुत से बिन्दु हो सकते हैं) गणित की दृष्टि से ज़्यादा स्पष्ट है। मैंने पहले भी यह ज़िक्र किया था कि गणित का स्वभाव है अर्थ को परे रख कर, *नोटेशन* के माध्यम से कार्य करना। मेरे ख्याल से ऐसा करने में गणित का मुख्य उद्देश्य होता है कि मूल बात को अपरिवर्तनीय रखा जाए। क्योंकि गणित करने के दौरान यदि आपके पास त्रिभुज के बारे में एक कथन है, आप उसको एक गणितीय कथन में रूपान्तरित कर देते हैं। अब आप उसको साबित करना चाहते हैं। वह कथन जो आपके पास है और वह जो आप साबित करना चाहते हैं उसके बीच n चरण हो सकते हैं। आपको इस कथन को कड़ा साम्य (समानता) व तादाम्य बनाते हुए और निष्कर्षों के कड़े निहितार्थों को ध्यान रखते हुए रूपान्तरित करना है। अब कोई कैसे यह सुनिश्चित करे कि इस रूपान्तरण (Transformation) में कथन व उसका अर्थ रत्ती भर भी विकृत नहीं हो।

अत: नोटेशन एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यह सभी अर्थों को एक खास तरीके से कूट रूप में गढ़ता है। तब आप कथन को इस तरह से रूपान्तरित कर सकते हैं कि हर बार इसका अर्थ अपरिवर्तनीय रहेगा। आपके पास यह गारंटी होती है कि जब तक आप नियमों का पालन करते रहेंगे अर्थ विकृत नहीं होगा। अत: गणित वह है जो ऐसे नोटेशन की ही रचना कर उसे इस्तेमाल करता है। आपको हर चरण में अर्थ के बारे में चिन्तित होने की ज़रूरत नहीं, आपको अनन्त चरणों तक चलने वाली इस प्रक्रिया के नियमों का हर कदम पर ध्यान रहना चाहिए। लेकिन अर्थ को आप किसी भी चरण पर रुककर पुर्नरचित कर सकते हैं। अब प्राय: कक्षाओं में इस नोटेशन का एक अर्थहीन सिस्टम बनाकर थोपा जाता है (जिसे कुछ रटे हुए नियमों के अनुसार जोड़-तोड़ कर इस्तेमाल किया जा सके)। इसमें दोनों ही बातों की अभिव्यक्ति है; गणित की ताकत की भी और साथ ही इनमें कुछ ऐसा भी है जो गणित के लिए अहितकर भी है।

यहाँ मेरा मानना है कि आप जो कर रहे हैं उसके साथ सक्रिय रूप से भिड़कर अन्तःक्रिया करना, जो कर रहें हैं उसे वर्णित करना, तर्क की दृष्टि से देखना कि आप वह चीज़ क्यों कर रहे हैं, और साथ ही भिन्न-भिन्न स्थानों पर अर्थ की पुनर्रचना करना आदि सभी में जुटे रहना बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिए बच्चे के दिमाग में अथवा सीखने वाले के दिमाग में अर्थ

को जीवित रखना केवल संवादपरक मनन (Dialogical Reflection) के माध्यम से ही किया जा सकता है। और गणित सीखने के शुरुआती चरणों में यह खास तौर से महत्वपूर्ण होता है।

एक बार जब आप उच्च स्तर की गणित करने लगते हैं, उस समय तक आप इस कार्यपद्धति में इतने डूब चुके होते हैं कि आप इस अर्थहीनता में भी कुछ समय तक उड़ान भर सकते हैं और तब पुन: लौटकर उस सबसे अपना स्वयं का अर्थ गढ़ सकते हैं। लेकिन यदि यह आप पहली दूसरी कक्षाओं में करना सीखने लगते हैं तब आप गणित नहीं सीख रहे होते, आप एक मृत नोटेशन सीखते हैं। इसलिए गणित में साधारण भाषा के साथ-साथ संवादपरक मनन का विचार भी बहुत महत्वपूर्ण है।

मैंने जो कहने का प्रयास किया है वह ज़्यादा ही बड़ा दावा हो सकता है और मैं इस सन्दर्भ में यह जानकर खुशी महसूस करूँगा कि वह क्या है जो मैं गलत कह रहा हूँ। मेरे अनुसार पहली बात यह है कि आत्मचेतना और भाषा में गहरा जुड़ाव प्रतीत होता है, दूसरा यह कि भाषा, तर्क और गणित में भी बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है और यदि आप दिमाग (Mind) और ज्ञान (Knowledge) को एक-दूसरे के बराबर मानते हैं, तो ये तीनों मिलकर शायद वह आधारभूत टूल किट बनाते हैं जिसके माध्यम से हम अपने स्वयं के दिमाग को आकार देते हैं। और तीसरा, इस समय मैं यह देख सकता हूँ कि इसमें भाषा ही सबसे आधारभूत 'अर्थ संरक्षित अर्थ निर्माण' करने वाली प्रणाली है। और इसलिए हर समय गणित और तर्क को अपने क्षेत्र से बाहर आकर साधारण भाषा में बातचीत की ज़रूरत होती है ताकि वे अपने पैर ज़मीन पर मज़बूती से रख सकें।

स्रोत

- रोहित धनकर, "भाषा, विचार और गणित", म्युज़िक, लैंग्वेज एंड सोसाइटी, सेमिनार प्रोसीडिंग्स, विद्या भवन सोसाइटी, उदयपुर, अप्रकाशित।